परिची जंहिं पियासे, साधूअ जो संगु कयो,
सहजे थियो सामी चए, तंहिंजो पटु पासे,
अंदरि बाहरि नभ जां, साखी सम भासे,
फिरी न फासे, अविद्या जे अंहकार में.

परमात्मा के दर्शन करने की कामना करने वाले मनुष्य के संबंध में सामी जी कहते हैं, ''जिस प्यासे मनुष्य ने प्रसन्न भाव से साधु संत का संग किया, उसका अविद्या/माया का आवरण अपने आप ही हट गया। फलस्वरूप उसे चारों ओर, भीतर और बाहर परमात्मा के अस्तित्व का बोध होने लगा; ठीक उस तरह जैसे आकाश बाहर और अंदर समान रूप से विद्यमान/उपस्थित रहता है। परमात्मा की सर्वव्यापकता का बोध जिस मनुष्य को हुआ है, वह पुनः अविद्या के अहंकार में नहीं फँसता।''

अविद्या का अर्थ है अज्ञान । अविद्या मिथ्या होती है। असत्य/अयथार्थ वस्तु का आभास निर्माण कराने वाली शक्ति अविद्या है। अविद्या की उपाधि के कारण जीवात्मा परमात्मा से अलग न होते हुए भी अलग भिन्न प्रतीत होता है। अविद्या आत्मा को जीव (मनुष्य) के रूप में बाँध देती है। वह माया की भाँति ही जीव को बंधनों में जकड़ने वाली होती है। वह जीवन को मलिन कर पाप-कर्म में डाल देती है। वह जीव के लिए बंधनकारक है। संसार के लगभग सभी जीव अविद्या के अहंकार में फँसे हुए हैं। अपवाद रूप में कुछ सच्चे साधु संत सत्पुरुष अविद्या से मुक्त होते हैं।

ऐसे आत्मज्ञानी संत सामान्यजनों के कल्याण की कामना/इच्छा करते रहते हैं। उनकी संगत में सामान्य मनुष्य भी आत्मज्ञानी बन जाता है। संतो के उपदेश एवं कृपा से उनके भीतर का अहंकार आदि निकल जाता है। फलतः वे सृष्टि के हर पदार्थ में परमेश्वर की व्यापकता प्रतीत करने लगते हैं। वे भेद-भाव रहित हो जाते हैं। जैसे आकाश सर्वव्यापक अनंत अवकाश तत्त्व है, सर्वश्रेष्ठ महाभूत है, उसी प्रकार परमेश्वर सर्वव्यापक है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'खं ब्रह्म' अर्थात् सब ब्रह्म ही है; अंतः आकाश में ब्रह्म है। सच्चा प्रेमी साधक साधु संत द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर अविद्या के बंधन से मुक्त हो जाता है। अंत में वह मुक्तावस्था प्राप्त कर अलौकिक सुख-संतोष और आनंद का अधिकारी बन जाता है, यह सत्संग का प्रताप है।

सत संगत में सुख बड़ा, जो करिजाने कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलिमल ढारें कोय।।

■